मेरी रानी मौसी

कादम्बिनी पांडेय

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Kadambini Pandey 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7825-287-7

Cover design: Anuj
Typesetting: Tanya Raj Upadhyay

First Edition: March 2026

समर्पण

उन सभी स्त्रियों के नाम, जो जीवन भर देती रहीं— और अंत में भी कुछ माँगना नहीं सीखा।

विशेष रूप से **रानी मौसी** को, जिनका मौन, शब्दों से अधिक मुखर था।

लेखक की ओर से

(Author's Note / Disclaimer)

यह पुस्तक किसी कल्पना की उपज नहीं है। यह स्मृतियों, अनुभवों और उन भावनाओं का दस्तावेज़ है, जिन्हें वर्षों तक मन के किसी कोने में दबाकर रखा गया। इसमें वर्णित घटनाएँ और पात्र वास्तविक हैं, और यह लेखन इसमें वर्णित अधिकांश तथ्य मेरी अपनी स्मृतियों का हिस्सा हैं, और जो घटनाएँ मेरे जन्म से पूर्व की हैं, वो मुझे मेरी मम्मी द्वारा बताई गई बातों पर आधारित हैं।"

रानी मौसी का जीवन मेरे लिए मात्र एक पारिवारिक कथा नहीं है। वह उन असंख्य स्त्रियों का प्रतिनिधि स्वर है, जिनका संघर्ष रोज़मर्रा का होते हुए भी कभी इतिहास में दर्ज नहीं होता—जो चुपचाप सहती हैं, निभाती हैं और अंततः मौन में ही विलीन हो जाती हैं।

यह लेखन मेरे लिए शोक से मुक्ति का साधन नहीं, बल्कि स्वीकार का प्रयास है—इस सच्चाई का कि कुछ लोग जीवन भर दूसरों के लिए जीते हैं, और उनका मूल्य अक्सर बहुत देर से समझ में आता है।

मेरी रानी मौसी अब इस दुनिया में नहीं हैं, लेकिन उनकी स्मृतियाँ आज भी मेरे साथ साँस लेती हैं। उनका जीवन बचपन से ही

संघर्षों से भरा रहा। सुख ने जैसे उन्हें छूने की कोशिश तो की, पर कभी थाम नहीं पाया।

आज वे हमारे बीच नहीं हैं, पर उनका स्नेह, उनका त्याग और उनकी चुप पीड़ा मेरी स्मृतियों में सजीव हैं। कुछ रिश्ते समय से नहीं, भावनाओं से बंधे होते हैं—और रानी मौसी मेरे जीवन का वही अमूल्य रिश्ता थीं।

रानी मौसी, आपने जीवन भर दूसरों के लिए जिया और अपने हिस्से का सुख मानो ईश्वर के पास जमा कर दिया। आपका जाना एक ऐसा खालीपन छोड़ गया है, जिसे कोई भर नहीं सकता। आप भले ही आज हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन आपकी ममता, आपका त्याग और आपका मौन संघर्ष हमारे हृदय में सदैव जीवित रहेगा।

मौसी के जाने के बाद मेरा मन लंबे समय तक व्यथित रहा। भीतर एक ऐसा खालीपन बस गया, जो रोज़मर्रा की व्यस्तताओं के बीच भी लगातार महसूस होता रहा। कई बार चाहा कि इन भावनाओं को शब्दों में ढालूँ, काग़ज़ पर उतारकर मन को थोड़ा हल्का कर सकूँ—लेकिन कभी समय की कमी आड़े आ गई, तो कभी मानसिक थकान ने रोक लिया।

फिर भी यह इच्छा मन में बनी रही कि रानी मौसी के लिए कुछ तो लिखा जाए। इसी क्रम में ChatGPT की सहायता से मैं एक सप्ताह के भीतर यह संस्मरण लिख सकी। यह केवल लेखन नहीं है,

बल्कि अपने भीतर दबे भावों को धीरे-धीरे स्वीकारने और बाहर आने देने की प्रक्रिया है।

यह संस्मरण रानी मौसी की स्मृति में एक छोटा-सा श्रद्धांजलि-पुष्प है—और साथ ही मेरे अपने मन को समझने, स्वीकारने और शांत करने का एक विनम्र प्रयास भी। शब्द शायद उनके अभाव को भर न सकें, लेकिन उनकी यादों के साथ जीने का साहस अवश्य देते हैं।

— कादम्बिनी पाण्डेय

भूमिका :
जो रहते हुए अनदेखा रह गया

जब रानी मौसी हमारे साथ थीं, तब उनकी मौजूदगी जीवन का इतना स्वाभाविक हिस्सा थी कि कभी यह सोचने का अवसर ही नहीं आया कि एक दिन वो यूँ नहीं होंगी। उनकी चुपचाप की गई देखभाल, उनका बिना कहे सब समझ लेना, और हर परिस्थिति में स्थिर रहना—ये सब बातें उस समय साधारण लगती थीं।

उनके जाने के बाद पहली बार यह एहसास हुआ कि जिन रिश्तों को हम सबसे ज़्यादा अपना मानते हैं, उन्हीं को सबसे ज़्यादा अनदेखा कर देते हैं। अब पीछे मुड़कर देखती हूँ तो अपने ही व्यवहार पर मन कचोटता है—कितनी बार उन्हें 'for granted' ले लिया, कितनी बार उनकी भावनाओं को बिना जाने छोड़ दिया।

अब मन बार-बार यही चाहता है कि काश एक बार फिर वे सामने बैठी हों। बस थोड़ी देर उनसे बात कर पाऊँ, उनके हाथ थामकर यह कह सकूँ कि उनका होना मेरे जीवन में कितना मायने रखता था।

लेकिन जीवन स्मृतियों को तो सँजो कर रखता है, अवसरों को नहीं। रानी मौसी अब केवल यादों में हैं—और उन्हीं यादों के सहारे

यह सीख भी दे गईं कि रिश्तों की कीमत उनके रहते समझ लेनी चाहिए, क्योंकि चले जाने के बाद समझना केवल एक अधूरा संवाद बनकर रह जाता है।

विषय-सूची

अध्याय 1: संघर्षों में जन्मा बचपन 1

अध्याय 2 : ममता जो माँ बन गई..... 5

अध्याय 3 : विवाह और टूटते सपने..... 8

अध्याय 4 : बच्चों के लिए जद्दोजहद..... 11

अध्याय 5 : पटना — सहारा और शोषण के बीच..... 13

अध्याय 6 : ढाल बनकर खड़ी रानी मौसी 19

अध्याय 7 : टूटता शरीर, थकता मन 21

अध्याय 8 : परीक्षाओं का सिलसिला 23

अध्याय 9 : अंतिम उम्मीदें..... 25

अध्याय 10 : चुपचाप विदा..... 27

अध्याय 11: क्या वह अपना प्रारब्ध पूरा करने आई थीं?..... 29

उपसंहार : एक मौन की विरासत 31

अध्याय 1:
संघर्षों में जन्मा बचपन

रानी मौसी आठ भाई-बहनों में सबसे छोटी थीं। सबसे बड़ी मेरी मम्मी थीं, उनके बाद बब्बू मामा, फिर रेखा मौसी, उसके बाद धन्नू मौसी, उनसे छोटे मनन मामा, फिर रवि मामा और छवि मामा। और इन सबके बाद सबसे छोटी थीं रानी मौसी। महज़ चार वर्ष की उम्र में ही उनके सिर से पिता का साया उठ गया, और वह भी ऐसे पिता, जिनसे वे सबसे अधिक प्रेम करती थीं और जिनके साथ स्वयं को सबसे अधिक सुरक्षित महसूस करती थीं। चार वर्ष की उम्र में पिता का साया उठ जाना किसी भी बच्चे के लिए असहनीय होता है, पर उनके लिए यह जीवन की दिशा बदल देने वाला क्षण था। उनके जाने के बाद जैसे उनकी पूरी दुनिया ही बदल गई। बचपन की वह निश्चिंत हँसी, वह बेफ़िक्री, अचानक कहीं खो गई।

नाना जी की मृत्यु से पहले तक मेरी मम्मी और रेखा मौसी की शादी हो चुकी थी। घर की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं थी, या यूं कहें की बहुत नाज़ुक थी, और नानी जी भी अधिक पढ़ी लिखी नहीं थीं। सीमित साधनों और परिस्थितियों की मजबूरी ने उन्हें एक कठोर निर्णय लेने पर विवश कर दिया।बचे हुए भाई बहनों को रिश्तेदारों के यहाँ पालन पोषण के लिए बाँटना पड़ा। इसी क्रम में बड़े मामा और

रानी मौसी नानी जी के साथ ही रह गए। छवि मामा और धन्नू मौसी को उनकी एक बुआ के यहाँ भेजा गया।मनन मामा दूसरी बुआ के यहाँ चले गए।और रवि मामा को मेरी मम्मी अपने साथ पिथौरागढ़ ले आईं—हालाँकि पापा ने इस निर्णय का खुले दिल से स्वागत नहीं किया।

किसी तरह तंगी के साथ और रिश्तेदारों के अपमान को सहते हुए वे सभी जीवन यापन करने लगे। अभाव अब केवल आर्थिक नहीं रह गया था — उसमें आत्मसम्मान की चोट भी शामिल हो चुकी थी। समय बीतता गया और रानी मौसी भी धीरे धीरे बड़ी होने लगीं थी।

पिथौरागढ़ में पापा को रवि मामा कभी विशेष रूप से पसंद नहीं आए। यह बात केवल एक व्यक्तिगत धारणा भर नहीं थी; समय-समय पर वह घर के वातावरण में भी दिखाई दे जाती थी।

इसी कारण मम्मी और पापा के बीच इस विषय को लेकर अक्सर तकरार हो जाया करती थी। मम्मी अपने मायके के प्रति स्वाभाविक रूप से संवेदनशील थीं, जबकि पापा अपने अनुभव और दृष्टिकोण से बात करते थे।

उधर पटना में नानी को भी यह विश्वास नहीं हो पा रहा था कि रानी मौसी वहाँ बड़े मामा के सानिध्य में पूरी तरह सुरक्षित हैं। उनकी यह चिंता केवल एक साधारण आशंका नहीं थी, बल्कि एक माँ का

सहज भय था—वह भय, जो परिस्थितियों को शब्दों से पहले समझ लेता है।

नानी की आँखें बहुत कुछ पढ़ लेती थीं। वे बाहरी व्यवहार से अधिक वातावरण की सूक्ष्म परतों को महसूस करती थीं। शायद उन्हें आने वाले समय की आहट सुनाई दे रही थी, या शायद वे केवल अपनी सबसे छोटी बेटी के लिए असामान्य रूप से सजग थीं।

माँ का मन तर्क से नहीं चलता—वह अनुभव और अंतर्ज्ञान से चलता है। और कई बार वही अंतर्ज्ञान सबसे सटीक साबित होता है।

नानी अपने इस डर को—कि रानी मौसी बब्बू मामा के साथ पूरी तरह सुरक्षित नहीं हैं—अकेले मन में नहीं रख सकीं। उन्होंने यह चिंता मम्मी के साथ साझा की। उसी क्रम में, मम्मी ने भी उन्हें बता दिया था कि रवि मामा को लेकर पापा और उनके बीच अक्सर कलह हो जाता है।

नानी ने बहुत सोच-विचार के बाद एक सुझाव दिया कि मम्मी रवि मामा को पटना में ही छोड़ दें और रानी मौसी को अपने साथ पिथौरागढ़ ले जाएँ।

यह केवल सुरक्षा का प्रश्न नहीं था; इसमें कई परतें थीं। एक ओर नानी को अपनी सबसे छोटी बेटी की चिंता थी, दूसरी ओर वे यह भी जानती थीं कि उस समय मम्मी की पढ़ाई जारी थी। घर और

पढ़ाई के बीच संतुलन साधना आसान नहीं था। उन्हें लगा, रानी मौसी के साथ चले जाने से मम्मी को भी कुछ सहारा मिल जाएगा।

इस एक निर्णय में सुरक्षा, सुविधा, संबंध और भविष्य—सब एक साथ बंधे हुए थे। शायद नानी ने उस समय जो सोचा, वह परिस्थितियों के अनुसार सबसे उचित लगा होगा।

अध्याय 2 :
ममता जो माँ बन गई

रानी मौसी हमारे घर पिथौरागढ़ आ गईं उस समय मैं केवल एक महीने की थी। शायद किस्मत ने उसी समय उनका और मेरा प्यार का रिश्ता तय कर दिया था।

मेरी मम्मी उनकी बड़ी बहन थीं, हालाँकि उम्र में दोनों के बीच लगभग बीस साल का अंतर था। बारह साल की उम्र में रानी मौसी एक अल्हड़, लापरवाह-सी बच्ची थीं—खुले मन की, अपनी ही धुन में रहने वाली। लेकिन यहाँ पिथौरागढ़ में घर का वातावरण अलग था। अनुशासन कड़ा था, नियम स्पष्ट थे और आज़ादी सीमित।

शुरुआत में उन्होंने थोड़ा विरोध किया। कभी चुप रहकर, कभी आँखों से, तो कभी अपने छोटे-छोटे व्यवहार से। शायद वह विरोध नहीं था, बल्कि अपने छूटते बचपन को थामे रखने की आख़िरी कोशिश थी। मगर रानी मौसी की यही ख़ासियत थी—वे परिस्थितियों से लड़ती नहीं थीं। बहुत जल्द उन्होंने सब स्वीकार कर लिया और धीरे-धीरे इस नए माहौल में ढल गईं।

देखते ही देखते वह लापरवाह-सी लड़की ज़िम्मेदारियों को समझने लगी। अनुशासन उनके स्वभाव का हिस्सा बन गया, और

त्याग उनकी आदत। किसी ने उन्हें यह सिखाया नहीं—जीवन ने सिखा दिया। और उन्होंने बिना शिकायत, बिना सवाल किए, हर सीख को अपने भीतर समेट लिया।

यहीं से शायद उनका वह जीवन शुरू हुआ, जिसमें उन्होंने खुद से पहले दूसरों को रखना सीख लिया—एक ऐसी आदत, जो आगे चलकर उनके पूरे अस्तित्व की पहचान बन गई।

पापा और मम्मी ने यह भी सोचा कि रानी मौसी का पिथौरागढ़ आना केवल परिस्थितियों का परिणाम न रहे, बल्कि उनके लिए भी कुछ सार्थक सिद्ध हो। वे चाहते थे कि यह परिवर्तन रानी मौसी के जीवन में एक नई दिशा लेकर आए।

इसी भावना से उन्होंने मौसी को पढ़ाई के लिए प्रेरित किया। शुरुआत में शायद उन्हें संकोच रहा हो, पर धीरे-धीरे उन्होंने किताबों से फिर दोस्ती कर ली। घर के कामों के बीच समय निकालना आसान नहीं था, पर उनमें सीखने की एक शांत लगन थी।

और फिर वह दिन भी आया जब उन्होंने वहीं रहकर हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली।

मैं भी धीरे-धीरे रानी मौसी के साथ बड़ी होने लगी। उनका स्नेह, उनकी उपस्थिति, उनके साथ बिताया हर पल मेरे लिए स्वाभाविक था। मुझे उनकी आदत पड़ चुकी थी—ऐसी आदत, जैसे साँस लेना।

उस समय यह एहसास ही नहीं था कि यह साथ कभी छूट भी सकता है। मेरे लिए रानी मौसी बस *मेरी* थीं।

फिर अचानक एक दिन पता चला कि रानी मौसी तो दूसरे घर की हैं। उनकी शादी होगी—और वह शादी नानी और मामा लोग तय करेंगे। यह बात मेरे बालमन को बिल्कुल समझ में नहीं आई। मन में बस यही प्रश्न उठता रहा कि जब वे मेरी हैं, तो फिर कोई और उनकी शादी क्यों कर रहा है? वे मुझसे दूर क्यों जा रही हैं?

मुझे याद है, उस उम्र में रिश्तों की परिभाषा बहुत सरल होती है—जो साथ है, वही अपना होता है। 'पराया' और 'अपना' जैसे शब्द तब समझ में नहीं आते थे । रानी मौसी का जाना मुझे किसी नियम की तरह नहीं, बल्कि किसी अपने के छिन जाने जैसा लगा।

शायद उसी समय पहली बार मैंने बिछोह को महसूस किया—बिना यह जाने कि जीवन में ऐसे बिछोह बार-बार आएँगे। रानी मौसी की शादी केवल उनका नया जीवन नहीं थी, बल्कि मेरे बचपन की पहली बड़ी टूटन भी थी, जिसे मैं शब्दों में तब नहीं, आज समझ पा रही हूँ।

अध्याय 3 :
विवाह और टूटते सपने

रानी मौसी ने शादी के पहले कभी गाँव नहीं देखा था। उनका जीवन अब तक शहर और कस्बे की सीमाओं में ही बीता था। ऐसे में उनकी शादी एक दूर-दराज़ के गाँव में तय हो गई। मम्मी बताती हैं कि उन्हीं दिनों *"नदिया के पार" नाम की* फ़िल्म आई थी। रानी मौसी ने भी उसी फ़िल्म की तरह अपने ससुराल के गाँव की कल्पना कर ली थी—खुले आँगन, हरियाली, अपनापन और सादगी से भरा जीवन।

लेकिन जब वे वहाँ पहुँचीं, तो वास्तविकता उनकी कल्पना से बिल्कुल उलट थी। न बिजली थी, न पानी। कच्चा मकान, शौचालय का अभाव, और लोटा लेकर खेतों में जाना—ये सब उनके लिए बिल्कुल नया और कठिन अनुभव था। ऊपर से मौसा जी भी बेरोज़गार थे। ननद का व्यवहार वैसा नहीं था, जैसा एक नई दुल्हन को सहारा दे सके।

उस पूरे माहौल में यदि कोई उनका अपना था, तो बस उनके सास और ससुर—जो उन्हें बहुत प्यार करते थे। वही दो रिश्ते थे, जिसमें उन्हें थोड़ी-सी सुरक्षा और अपनापन महसूस होता था। लेकिन

इतने सहारे से पूरा जीवन नहीं कटता। उनके सारे सपने जैसे एक ही क्षण में बिखर गए।

फिर भी रानी मौसी ने विरोध नहीं किया। उन्होंने हालात से लड़ने के बजाय खुद को उनमें ढाल लिया। हालाँकि मन में यह इच्छा ज़रूर रहती थी कि जल्दी-जल्दी मायके जाया करें—वहाँ जहाँ उन्हें समझा जाता था। पर समय के साथ उन्होंने सब कुछ अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लिया।

और शादी के केवल एक वर्ष बाद ही रानी मौसी की गोद में रजनीश आ गया। जब यह खबर मुझे मिली, तो मैं सचमुच बहुत खुश हुई थी। लगा था जैसे मेरे अपने घर में कोई नया उजाला आया हो। मौसी ने रजनीश की एक तस्वीर भी मुझे भेजी थी—वह तस्वीर आज भी मेरे पास सुरक्षित है।

लेकिन जब पहली बार मैंने रानी मौसी के साथ रजनीश को देखा, तो मेरे भीतर कुछ हल्का-सा टूट गया। मैं नहीं जानती कि वह मेरा भ्रम था या सच, पर मुझे उनके व्यवहार में वह अपनापन, वह सहज स्नेह नहीं दिखा, जिसकी मुझे आदत थी। शायद अब उनका पूरा संसार उनकी गोद में समा गया था।

धीरे-धीरे मुझे समझ आने लगा कि अब रानी मौसी और मेरे संबंध का स्वरूप बदल चुका है। वह पहले जैसा नहीं रह पाएगा। यह कोई शिकायत नहीं थी, बस एक चुप-सी स्वीकृति थी—कि जीवन में नए रिश्ते आते हैं तो पुराने रिश्तों का संतुलन भी बदल जाता है।

मैंने मौसी को खोया नहीं था, पर शायद उन्हें किसी और के साथ बाँट लेना सीखा था। लेकिन यह सीखना आसान नहीं था।

फिर देखते ही देखते रजनीश से दो वर्ष छोटा मनीष और मनीष से चार वर्ष छोटा विश्वास भी इस दुनिया में आ गए। रानी मौसी का आँगन तीन नन्हीं आवाज़ों से भर गया। घर में चहल-पहल बढ़ गई, ज़िम्मेदारियाँ भी और खुशियाँ भी।

मौसी से मेरे संबंधों में भले ही एक हल्की-सी दूरी आ गई थी, पर उन तीनों बच्चों से मुझे एक अलग ही लगाव और अपनापन महसूस होता था। शायद इसलिए कि उनमें मुझे मौसी की झलक दिखाई देती थी, या शायद इसलिए कि बच्चों के मन में कोई दीवार नहीं होती।

वे जब भी मेरे पास आते, घर जैसे खिल उठता था। उनकी छोटी-छोटी बातें, उनकी मासूम हँसी और उनका बेझिझक स्नेह मेरे मन के उस खाली कोने को भर देता, जहाँ कभी मौसी के साथ का सहज रिश्ता बसता था।

समय बदला, परिस्थितियाँ बदलीं, रिश्तों के रूप बदले—पर उन तीनों के प्रति मेरा स्नेह कभी कम नहीं हुआ। वह अपनापन आज भी वैसा ही है,

अध्याय 4 :
बच्चों के लिए जद्दोजहद

देखते ही देखते जीवन ने रानी मौसी को और ज़िम्मेदारियाँ सौंप दीं। बहुत कम समय में वे तीन बेटों की माँ बन गईं। बचपन में जिनके हाथों में सपने थे, अब उन्हीं हाथों में बच्चों का भविष्य था। और हमेशा की तरह, रानी मौसी ने बिना कुछ कहे, सब संभाल लिया।

रानी मौसी ने अपने लिए तो सब कुछ स्वीकार कर लिया था, लेकिन बच्चों के मामले में उनका मन कभी समझौता नहीं कर पाया। वो चाहती थीं कि उनके बच्चे वह जीवन न जिएँ, जो उन्हें जीना पड़ा। मौसा जी से उन्हें किसी ठोस सहारे की उम्मीद नहीं थी, इसलिए उनका सारा भरोसा अपने मायके पर ही टिका रहता था।

इसी बीच मेरे पापा के रिटायरमेंट के बाद हम लोग प्रयागराज शिफ्ट हो गए। रानी मौसी के मन में एक नई उम्मीद जगी—शायद अब मेरी मम्मी के ज़रिये उनके बच्चों के लिए कुछ बेहतर किया जा सके। और मम्मी ने भी, अपने सामर्थ्य से बढ़कर, उनकी मदद करने की हर संभव कोशिश की। कई बार पापा के विरोध के बावजूद—कभी चुपचाप, कभी खुलकर बहस करके।

फिर मेरी दीदी की शादी हो गई। उस समय हम तीनों भाई-बहनों ने मिलकर यह प्रस्ताव रखा कि मौसी के बड़े बेटे रजनीश, जो नौवीं कक्षा में जाने वाला था, उसे पढ़ाई के लिए प्रयागराज अपने साथ रख लिया जाए। यह सुनकर रानी मौसी की आँखों में जो खुशी आई, वह शब्दों में कहना मुश्किल है। मम्मी भी इस पर सहमत हो गईं।

लेकिन पापा को यह बिल्कुल पसंद नहीं आया। विरोध तीखा था, तर्क कड़े थे, और माहौल तनावपूर्ण। फिर भी, सबके विरोध और असहजता के बीच, अंततः रजनीश को हमारे साथ रखा गया। यह केवल एक बच्चे को घर में रखने का फैसला नहीं था—यह रानी मौसी के उस सपने को सहारा देने की कोशिश थी, जिसे उन्होंने वर्षों तक अपने भीतर दबाकर रखा था।

उस समय मैं भी छोटी थी, पर अब महसूस होता है कि कुछ फैसले घर के नियमों से नहीं, रिश्तों की जिम्मेदारी से लिए जाते हैं। और रानी मौसी के लिए, उनके बच्चों का भविष्य हर विरोध से बड़ा था।

अध्याय 5 :
पटना – सहारा और शोषण के बीच

रजनीश के हमारे साथ रहने के निर्णय के बीच ही रानी मौसी के जीवन में एक बहुत बड़ा और अप्रत्याशित बदलाव आ खड़ा हुआ। अचानक नानीजी का देहांत हो गया। उस समय रानी मौसी नानी के पास ही पटना में थीं। नानी के अलावा उस घर में सबसे छोटे मामा—छवि मामा—रहते थे, जो अविवाहित और बेरोज़गार थे; और सच कहूँ तो आज तक उनकी स्थिति वही बनी हुई है। उनके साथ धन्नू मौसी भी रहती थीं। धन्नू मौसी का वैवाहिक जीवन सफल नहीं रहा था, इसलिए नानी उन्हें अपने साथ अपने घर ले आई थीं। मायके आने के बाद ही धन्नू मौसी की सरकारी नौकरी एक माध्यमिक विद्यालय में शिक्षिका के रूप में लग गई थी।

घर का खर्च नानी की सीमित पेंशन और धन्नू मौसी की सहायता से किसी तरह चलता था। नानी के जाने के बाद धन्नू मौसी पूरी तरह बेसहारा हो गईं। उन्होंने रानी मौसी से आग्रह किया कि वे कुछ दिनों तक पटना में ही रुक जाएँ और उन्हें सहारा दें। रानी मौसी ने इस आग्रह को ठुकराया नहीं। उस समय उनका सबसे छोटा बेटा विश्वास उन्हीं के साथ था, जबकि मँझला बेटा मनीष गाँव में रह रहा था।

धन्नू मौसी हर बार 'कुछ दिन और' का आग्रह कर रानी मौसी को लौटने से रोक लेती थीं, और यह आग्रह धीरे-धीरे एक बंधन में बदलता चला गया। जो "कुछ दिन" थे, वे धीरे-धीरे बढ़ते चले गए—दिन महीनों में बदले और महीने सालों में। विश्वास का दाख़िला भी पटना में ही करा दिया गया। रानी मौसी कभी-कभार कुछ दिनों के लिए अपने ससुराल आतीं और फिर धन्नू मौसी के पास लौट जातीं।

इसी बीच रानी मौसी के ससुर जी का भी देहांत हो गया।ससुर जी के अंतिम दिनों में रानी मौसी ने पूर्ण निष्ठा के साथ उनकी सेवा की—बिना थके, बिना किसी अपेक्षा के। लेकिन धन्नू मौसी के दबाव के कारण रानी मौसी को शीघ्र ही पुनः पटना जाना पड़ा।

मनीष, जो रानी मौसी का मँझला बेटा है, खुद को उपेक्षित महसूस करने लगा। एक ओर रजनीश हमारे यहाँ प्रयागराज में रह रहा था, दूसरी ओर विश्वास माँ के साथ था, और मनीष को अकेले गाँव में रहना पड़ता था।

हालाँकि मनीष स्वभाव से बहुत उग्र था; वह किसी के साथ लंबे समय तक रह भी नहीं पाता था। दादा-दादी का स्नेह उसे सबसे अधिक मिला, पर माँ की अनुपस्थिति का खालीपन उससे छुपा नहीं रहता था।

इसी बीच धीरे-धीरे धन्नू मौसी रानी मौसी पर हावी होने लगीं। उनका व्यवहार ऐसा हो गया मानो रानी मौसी उनकी बहन नहीं, बल्कि उनकी अधीनस्थ हों। साथ ही छवि मामा भी रानी मौसी को

अपने रास्ते का काँटा मानने लगे। उन्हें लगता था कि यदि रानी मौसी न होतीं, तो धन्नू मौसी पूरी तरह उन पर निर्भर हो जातीं और उनकी पूरी तनख़्वाह पर उन्हीं का अधिकार होता। इस तरह एक ही घर में रिश्तों के भीतर-ही-भीतर अदृश्य दीवारें खड़ी होने लगीं, जिनकी दरारें समय के साथ और गहरी होती चली गईं।

और इधर, रानी मौसी ने जिस उम्मीद और विश्वास के साथ रजनीश को हमारे पास रखा था, वह पूरी तरह सफल नहीं हो सका। पढ़ाई से रजनीश का मन भटकने लगा और शहर की चकाचौंध उसे आकर्षित करने लगी। परिणामस्वरूप वह बारहवीं की परीक्षा में असफल हुआ और अंततः उसे गाँव वापस लौटना पड़ा।

गाँव लौटना उसके लिए केवल स्थान-परिवर्तन नहीं था, बल्कि एक टूटे हुए सपने की चुपचाप स्वीकारोक्ति भी थी। मौसी की आँखों में अब शिकायत नहीं, बल्कि एक अनकहा दुख था—शायद अपनी कोशिशों की असफलता का, शायद समय के हाथों हार जाने का।

और उधर पटना में रिश्तों में बढ़ते टकराव और छवि मामा के लगातार बिगड़ते दुर्व्यवहार ने हालात को असहनीय बना दिया। अंततः रानी मौसी और धन्नू मौसी को बिना छवि मामा को बताए नानी का वह फ्लैट छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। यह निर्णय अचानक लिया गया था, लेकिन उसके पीछे लंबे समय से जमा पीड़ा और असुरक्षा थी। दोनों ने धन्नू मौसी के स्कूल के पास ही एक किराए

का मकान ले लिया, ताकि कम-से-कम रोज़मर्रा का जीवन कुछ सहज हो सके।

छवि मामा इस फैसले से बेहद नाराज़ हुए। उन्हें यह कदम विश्वासघात जैसा लगा, लेकिन रानी मौसी और धन्नू मौसी ने अपना निर्णय नहीं बदला। शायद पहली बार उन्होंने रिश्तों से ज़्यादा अपनी मानसिक शांति को प्राथमिकता दी थी।

इस पूरे घटनाक्रम ने एक बात साफ़ कर दी—अब रानी मौसी का पटना में रहना अस्थायी नहीं, बल्कि स्थायी हो गया था। यह स्थायित्व किसी सपने का परिणाम नहीं था, बल्कि परिस्थितियों के दबाव में लिया गया एक विवश निर्णय था, जिसने आने वाले समय में कई और रिश्तों की दिशा बदलनी थी।

रानी मौसी को पटना में रहने के अपने फैसले के कारण समाज और रिश्तेदारों की ओर से तीखा विरोध और कई झूठे लांछन सहने पड़े। लोगों ने परिस्थितियों को समझने के बजाय सवाल उठाने शुरू कर दिए। पर इस सबके बीच एक सकारात्मक बात यह थी कि न तो मौसी की सास और न ही मौसा जी ने उनके निर्णय का विरोध किया। समय के साथ मौसी की सास भी मौसी को अत्यधिक स्नेह करने लगी थीं, मानो उनके त्याग और सहनशीलता को पहचानने लगी हों।

रजनीश के गाँव वापस चले जाने के बाद रानी मौसी ने विश्वास को हमारे साथ प्रयागराज में रखने का विचार हम लोगों के समक्ष

रखा। पुराने कटु अनुभव अभी भी स्मृति में ताज़ा थे—उनसे जुड़ी निराशाएँ, उलझनें और भीतर का अव्यक्त तनाव भी।

फिर भी न जाने क्यों, हमने मना नहीं किया। शायद यह रानी मौसी के प्रति हमारा स्नेह था, या यह विश्वास कि हर बच्चा अलग होता है और हर परिस्थिति दोहराई नहीं जाती।

मम्मी ने थोड़ी चिंता के साथ सहमति दी, और मैंने भी मन ही मन यह ठान लिया कि इस बार हम और सजग रहेंगे। हमने सोचा—अगर हम साथ खड़े रहेंगे तो शायद चीज़ें बेहतर हो सकेंगी।

पुराने अनुभवों की कसक के बावजूद, उम्मीद ने एक बार फिर दस्तक दी थी।

और विश्वास भी छठी कक्षा में प्रयागराज आ गया। उस समय घर में मैं, मम्मी और पापा रहा करते थे। विश्वास का आना मुझे और मम्मी को तो बहुत अच्छा लगा—घर में जैसे फिर से एक नई चहल-पहल आ गई थी। पर पापा को यह बात उतनी पसंद नहीं आई। दरअसल पापा को घर में हम पाँच लोगों के अलावा किसी और का रहना सहज नहीं लगता था। उन्हें अपनी सीमित और व्यवस्थित दुनिया प्रिय थी, जिसमें बाहरी हस्तक्षेप उन्हें असुविधा देता था।

शुरुआत में विश्वास बहुत सीधा-सादा बच्चा था। पढ़ाई के अलावा उसे किसी चीज़ से कोई मतलब नहीं था। वह चुपचाप अपना काम करता, स्कूल जाता, लौटकर पढ़ाई करता। एक साल

बहुत अच्छे से निकल गया। हमें लगा था कि इस बार सब ठीक रहेगा—शायद पिछली गलतियाँ दोहराई नहीं जाएँगी।

पर फिर वही किस्मत…

धीरे-धीरे परिवेश का असर उस पर भी दिखने लगा। उम्र का वह पड़ाव, नई जगह, नए दोस्त—सब मिलकर जैसे उसके भीतर कुछ बदलने लगे। वह बदलाव अचानक नहीं था, पर इतना सूक्ष्म भी नहीं कि अनदेखा किया जा सके।

रानी मौसी को भी लगने लगा था कि इस बार परिस्थितियाँ बदल जाएँगी, कि इस बार सब कुछ संभल जाएगा। पर दुर्भाग्यवश, विश्वास ने भी वही राह पकड़ ली। पढ़ाई से ज़्यादा शहर की चकाचौंध उसे भी अपनी ओर खींचने लगी और देखते-ही-देखते वही कहानी दोहराई जाने लगी।

फिर एक आकस्मिक घटनाक्रम ऐसा घटा, जिसने सबको हिला कर रख दिया। हालात इतने बिगड़ गए कि बिना किसी तैयारी के, रातों-रात विश्वास को पटना भेजना पड़ा। वह विदाई न तो सोच-समझकर की गई थी, न ही मन से—बस परिस्थितियों की मजबूरी थी।

उस समय रानी मौसी की आँखों में केवल चिंता नहीं थी, बल्कि एक गहरा आत्मदोष भी था—मानो वे खुद से पूछ रही हों कि आखिर कहाँ चूक हो गई।

अध्याय 6 :
ढाल बनकर खड़ी रानी मौसी

मेरे जीवन में भी संघर्षों और परीक्षाओं की शुरुआत हो चुकी थी। समय ने मुझे भी उतार-चढ़ाव के कई रंग दिखाए। परिस्थितियाँ कभी सहज नहीं रहीं, और कई बार ऐसा लगा कि दुनिया की कठोरता से अकेले जूझना पड़ेगा।

पर इन सबके बीच एक बात कभी नहीं बदली—रानी मौसी का मेरे लिए हमेशा उपलब्ध रहना। जब-जब मुझे सहारे की ज़रूरत हुई, मैंने उन्हें अपने पास खड़ा पाया। कई बार तो वे मुझे दुनिया की बुराइयों के बीच एक ढाल की तरह महसूस होती थीं। उनका होना मुझे एक अलग सा आत्मविश्वास देता था।

वे मेरी हर ज़रूरत पर बिना शर्त साथ खड़ी दिखती थीं। यहाँ तक कि कभी-कभी उनके अपने बच्चे भी उनसे शिकायत करते थे और कहते थे—"आप तनु दीदी को हमसे ज़्यादा प्यार करती हैं।" और तब भी वे इसका विरोध नहीं करती थीं। बड़े सहज और स्पष्ट शब्दों में कह देती थीं—

“हाँ, करते हैं हम तनु से ज़्यादा प्यार। हमें भरोसा है कि अगर हम सब से दुखी होकर तनु के पास चले जाएँगे, तो वह हमें बहुत प्यार से रखेगी।”

उनका यह विश्वास मेरे लिए आशीर्वाद था और जिम्मेदारी भी। मेरी हर आवश्यकता पर मेरे पास आने के लिए वे धन्नू मौसी से भी लड़ने से पीछे नहीं हटती थीं।

उनका यह रूप मेरे लिए पुराने रिश्ते को पुनर्जीवित करने जैसा था—बल्कि पहले से भी अधिक परिपक्व और गहरा। अब हमारे बीच बचपन वाली अपेक्षाएँ नहीं थीं, बल्कि समझ थी। मैं उन्हें बेहतर समझने लगी थी, और वे मुझे। हमारे रिश्ते में शब्दों से अधिक विश्वास बोलता था।

अध्याय 7 :
टूटता शरीर, थकता मन

पटना में रहते हुए रानी मौसी को चैन नसीब नहीं था। धन्नू मौसी उनके साथ गुलाम-सा व्यवहार करने लगी थीं—एक-एक पैसे के लिए उन्हें मोहताज बना दिया गया था। दूसरी ओर बच्चे और ससुराल वाले उनसे यह उम्मीद रखते थे कि जब भी रानी मौसी आएँगी, तो सबकी ज़रूरतें पूरी करेंगी, जैसे वे किसी दूर देश में कमाने गई हों।

इन दो पाटों के बीच पिसते-पिसते रानी मौसी मानसिक रूप से अत्यंत त्रस्त रहने लगीं। पहले वे लोगों के विरोध और आरोपों का जवाब देती थीं, अपनी सफ़ाई देने की कोशिश करती थीं; पर धीरे-धीरे उन्होंने मौन को अपना लिया। अब वे बस बेबस-सी नज़रों से सब कुछ देखती रहती थीं, जब हर ओर से उन्हें ही दोषी ठहराया जाता था।

इस स्थिति की ज़िम्मेदारी मुख्य रूप से मौसा जी पर ही आती है, क्योंकि उन्होंने कभी अपने परिवार की वास्तविक ज़िम्मेदारियों को समझने और निभाने का प्रयास नहीं किया। उनकी निष्क्रियता ने रानी मौसी को अकेले संघर्ष करने के लिए छोड़ दिया—ऐसे संघर्ष

में, जहाँ न सही-गलत की स्पष्ट रेखा थी, न ही सहारे का कोई ठोस हाथ।

लगातार होते मानसिक उत्पीड़न ने रानी मौसी के शरीर और मन—दोनों को तोड़ना शुरू कर दिया। वे मानसिक रूप से बीमार रहने लगीं; बीच-बीच में अचानक बेहोश हो जाती थीं। हालात इतने बिगड़ गए कि उन्हें भारी मात्रा में दवाइयाँ लेनी पड़ने लगीं। मुस्कान, जो कभी उनके चेहरे पर सहज रहती थी, अब दुर्लभ हो गई थी।

धीरे धीरे समय के साथ धन्नू मौसी की उम्र भी बढ़ रही थी। उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता था, और उनकी देखभाल की ज़िम्मेदारी भी रानी मौसी पर ही आ पड़ी थी। विडंबना यह थी कि जो दूसरों का सहारा बनी रहीं, वे अपने ही स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह होती चली गईं। वे खुद को लगातार नज़रअंदाज़ करती रहीं, मानो उनका दर्द किसी गिनती में ही न आता हो।

इस तरह रानी मौसी एक ऐसे चक्र में फँस गई थीं, जहाँ न तो उन्हें बीमार पड़ने का अधिकार था और न ही आराम करने का। हर भूमिका निभाते-निभाते वे धीरे-धीरे खुद से दूर होती चली गईं।

अध्याय 8 :
परीक्षाओं का सिलसिला

रानी मौसी के तीनों बच्चे अब बड़े हो चुके थे। जीवन के उतार-चढ़ाव झेलने के बाद उनके जीवन में एक ठहराव आ गया था। बाहर से देखने पर सब अपने-अपने जीवन में सफल प्रतीत होने लगे थे। रजनीश और मनीष की शादी भी हो चुकी थी। अब बस विश्वास की शादी होनी बाकी थी।

पर लगता है, रानी मौसी के हिस्से का दुःख अभी पूरा नहीं हुआ था। जैसे किस्मत ने उनसे कहा हो—*"तू मुस्कराने की हिम्मत कैसे कर रही है?"* इसी बीच मौसा जी की किडनी अचानक खराब हो गई। इलाज शुरू हुआ, उम्मीदें बँधीं, पर वह बहुत दिन तक साथ नहीं रहीं। कुछ ही दिनों के उपचार के बाद वे इस संसार से चले गए।

जब जीवन थोड़ा स्थिर होने लगा था, तभी यह अंतिम आघात उन्हें भीतर तक तोड़ गया। मौसा जी के जाने के बाद ऐसा लगा, मानो रानी मौसी के जीवन में दुःख ने ठहरने का नहीं, बल्कि कतार में आने का निश्चय कर लिया हो। एक परीक्षा समाप्त भी नहीं होती थी कि दूसरी सामने खड़ी मिलती थी। कुछ ही समय बाद एक और वज्रपात हुआ। पता चला कि रजनीश—उनका बड़ा बेटा—दोनों किडनियों के खराब हो जाने से जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहा है। डॉक्टरों

ने स्पष्ट कर दिया कि उसे बचाने का एकमात्र उपाय किडनी ट्रांसप्लांट ही है।

किडनी दान के लिए रानी मौसी तुरंत तैयार हो गईं। उन्हें अपने स्वास्थ्य की कोई चिंता नहीं थी; एक माँ के लिए बेटे का जीवन ही सर्वोपरि था। लेकिन चिकित्सकीय जाँच के बाद डॉक्टरों ने उन्हें दान के लिए अनुपयुक्त घोषित कर दिया और सख़्त शब्दों में कहा—"पहले आप स्वयं अपना इलाज कराइए।"

विडंबना यह थी कि जिस स्थिति पर उन्हें सहानुभूति मिलनी चाहिए थी, उसी को आधार बनाकर कुछ लोगों ने उन्हें दोषी ठहराने की कोशिश की—मानो बेटे की बीमारी के लिए भी वही उत्तरदायी हों। यह आरोप उनके लिए शारीरिक पीड़ा से अधिक मानसिक यातना देने वाला था।

ईश्वर की कृपा से रजनीश का किडनी ट्रांसप्लांट सफल रहा। यह जीवनदान उसे उसकी सास ने दिया। उस दिन रानी मौसी की आँखों में कृतज्ञता के आँसू थे—माँ की उस शांति के आँसू, जो यह जानकर निश्चिंत हो जाती है कि उसका बच्चा अब सुरक्षित है।

अध्याय 9 :
अंतिम उम्मीदें

अब धन्नू मौसी की सेवानिवृत्ति भी निकट थी। इतने वर्षों के अनुभव और परिस्थितियों ने धन्नू मौसी को यह समझा दिया था कि रानी मौसी का महत्व क्या है। उन्हें साफ़ दिखाई देने लगा था कि रानी मौसी के बिना उन्हें देखने-सम्भालने वाला कोई नहीं बचेगा। इसी एहसास के साथ उनके व्यवहार में धीरे-धीरे बदलाव आने लगा। वे अब रानी मौसी के साथ दुर्व्यवहार से बचने लगी थीं और अपने पैसों पर भी रानी मौसी का अधिकार मानने लगी थीं।

उन्होंने रानी मौसी से यह वादा भी कर लिया था कि सेवानिवृत्ति के बाद वे दोनों प्रयागराज आकर साथ रहेंगी।

उन्हें जो भी फंड मिलेगा और जो पेंशन आएगी, उस पर पूरा अधिकार रानी मौसी का होगा। यह वादा शायद कृतज्ञता से ज़्यादा भय से उपजा था—उस भय से, जो अकेले पड़ जाने की कल्पना मात्र से पैदा होता है।

उन दोनों ने यह निर्णय लिया कि वे तीनों बच्चों में से किसी के साथ नहीं रहेंगी। वर्षों के अनुभव ने उन्हें सिखा दिया था कि रिश्तों को निभाने के लिए थोड़ी दूरी भी ज़रूरी होती है। इसलिए उन्होंने

अलग घर लेकर रहने का फैसला किया—ऐसा घर, जहाँ किसी पर बोझ बनने का डर न हो और जहाँ अपनी शर्तों पर साँस ली जा सके।

यह फैसला पलायन नहीं था, बल्कि आत्मसम्मान की एक शांत घोषणा थी। जीवन भर दूसरों के लिए जीने के बाद अब वे अपने लिए थोड़ी-सी जगह चाहती थीं—एक ऐसा ठिकाना, जहाँ रिश्ते मजबूरी नहीं, इच्छा से निभाए जाएँ।

धन्नू मौसी का स्वास्थ्य लगातार गिरता जा रहा था। इसी कारण उन्होंने समय से छह महीने पहले ही स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति लेने का निर्णय कर लिया। उसी दौरान रानी मौसी ने अपने जीवन की एक अंतिम बड़ी ज़िम्मेदारी भी पूरी कर ली—विश्वास की शादी। वर्षों से जो चिंता उनके मन में जमी थी, वह इस विवाह के साथ कुछ हद तक हल्की हुई।

अध्याय 10 :
चुपचाप विदा

विश्वास की शादी के बाद रानी मौसी और धन्नू मौसी आख़िरी बार पटना गईं। वह यात्रा केवल सामान समेटने की नहीं थी, बल्कि एक पूरे अध्याय को समेटने की यात्रा थी। वहाँ उन्हें घर का सारा सामान लाना था और कुछ सरकारी औपचारिकताएँ भी पूरी करनी थीं। हर कमरा, हर कोना, बीते वर्षों की गवाहियों से भरा हुआ था—दुख, संघर्ष, अपमान और सहनशीलता की मूक स्मृतियाँ लिए हुए।

उसके बाद यही उम्मीद थी कि अब रानी मौसी के संघर्ष के दिन समाप्त होंगे। लगा था कि जीवन शायद अब उन्हें थोड़ा विश्राम देगा। लेकिन किस्मत…

किस्मत ने जैसे यह स्वीकार ही नहीं किया।

रानी मौसी अक्सर बेहोश हो जाया करती थीं। कुछ देर बाद होश आ जाता था और सब लोग इसे उनकी पुरानी बीमारी समझकर मन को समझा लेते थे। इस बार भी पटना में वे बेहोश हुईं। पर इस बार कुछ अलग था।

इस बार वह उनकी **अंतिम बेहोशी** थी।

वे फिर कभी होश में नहीं आईं।

यह लिखते समय मैं लैपटॉप की स्क्रीन ठीक से देख नहीं पा रही हूँ। मेरी आँखें आँसुओं से भरी हैं और उँगलियाँ काँप रही हैं। शब्द साथ नहीं दे रहे, पर मन पर जो बोझ है, वह उतारना ज़रूरी है। जिस स्त्री ने जीवन भर सबके लिए सहा, जिसने कभी अपने दुख को आवाज़ नहीं दी—उसका अंत भी बिना शिकायत, बिना शोर, चुपचाप हो गया।

शायद यही उनकी सबसे बड़ी त्रासदी थी—और सबसे बड़ा त्याग भी।

वह अपने बच्चों से भी क्षुब्ध थीं। इसलिए नहीं कि वे उन्हें प्रेम नहीं करती थीं, बल्कि इसलिए कि वे उनके त्याग को देख नहीं पाए। बार-बार ऐसा हुआ कि जिनके लिए उन्होंने अपना पूरा जीवन खपा दिया, वही लोग उन्हें कटघरे में खड़ा कर देते थे। प्रश्न पूछे जाते थे, अपेक्षाएँ रखी जाती थीं, पर उनके हिस्से का समझना किसी को याद नहीं रहता था।

इसीलिए शायद उन्होंने किसी से किसी तरह की मदद नहीं ली। न शिकायत की, न किसी से सहारा माँगा। वे चुप रहीं—इतनी चुप कि एक दिन उसी चुप्पी के साथ बहुत दूर चली गईं।

उनका जाना कोई अचानक हुआ निर्णय नहीं था, बल्कि वर्षों से जमा हुई उस पीड़ा का अंतिम परिणाम था, जिसे उन्होंने कभी शब्द नहीं दिए। उन्होंने जीवन भर देना सीखा था, माँगना नहीं। और अंत में, बिना कुछ कहे, उन्होंने खुद को भी जीवन से अलग कर लिया।

अध्याय 11:
क्या वह अपना प्रारब्ध पूरा करने आई थीं?

इन सब बातों के बीच कभी-कभी एक सकारात्मक विचार मेरे मन में उठता है। लगता है—हो सकता है रानी मौसी कोई साधारण आत्मा नहीं थीं। शायद वे एक पवित्र आत्मा थीं, जिन्होंने अपना अंतिम जन्म लिया था, केवल अपना प्रारब्ध भोगने के लिए।

जीवन भर उन्होंने जो कुछ सहा—अपमान, उपेक्षा, मानसिक पीड़ा, गलत आरोप—सब कुछ उन्होंने लगभग मौन रहकर स्वीकार किया। कई बार सोचती हूँ, यह सहनशीलता सामान्य नहीं थी। यह कोई कमजोरी नहीं थी; यह एक गहरी आध्यात्मिक समझ भी हो सकती है।

शायद वे जानती थीं कि प्रतिकार करने से कर्मों की नई गांठें बंध जाती हैं। इसलिए उन्होंने प्रतिक्रिया से अधिक मौन को चुना। उन्होंने दुःख को आगे बढ़ाने के बजाय वहीं रोक दिया—अपने भीतर।

कभी-कभी मुझे लगता है, उन्होंने अपने हिस्से का समस्त प्रारब्ध शांत भाव से भोग लिया, ताकि आगे कोई ऋण शेष न रहे। उन्होंने किसी के प्रति कटुता नहीं रखी, किसी से बदला नहीं लिया,

किसी पर आरोप नहीं लगाया। मानो वे इस धरती पर केवल अपना हिसाब पूरा करने आई थीं—और जब वह पूरा हो गया, तो बिना शोर किए चली गईं।

यह सोच मुझे सांत्वना देती है।

उनका जीवन भले संघर्षों से भरा था, पर शायद उनकी आत्मा मुक्त थी।

उपसंहार :
एक मौन की विरासत

रानी मौसी का जीवन किसी साधारण कथा की तरह शुरू हुआ, पर वह धीरे-धीरे एक लंबी साधना में बदल गया। उन्होंने जीवन से बहुत कुछ माँगा नहीं—जो मिला, उसे स्वीकार किया; जो छिना, उसे भी चुपचाप सह लिया।

उनकी कहानी में न कोई बड़ी क्रांति है, न कोई ऊँची आवाज़। पर शायद यही उनकी सबसे बड़ी ताक़त थी। उन्होंने प्रतिकार से अधिक धैर्य चुना, शिकायत से अधिक मौन। वे हर रिश्ते में अपना हिस्सा निभाती रहीं—बेटी, बहन, पत्नी, माँ, मौसी—पर स्वयं के लिए बहुत कम बचा पाईं।

कई बार सोचती हूँ, क्या यह सब केवल परिस्थितियों का खेल था? या सचमुच वे अपना प्रारब्ध पूरा करने आई थीं? यदि ऐसा था, तो उन्होंने उसे पूरी गरिमा के साथ निभाया। उन्होंने किसी के प्रति कटुता नहीं रखी, किसी को दोष नहीं दिया।

आज जब मैं पीछे मुड़कर देखती हूँ, तो रानी मौसी एक व्यक्ति से अधिक एक सीख बनकर खड़ी दिखाई देती हैं। उन्होंने सिखाया

कि सहनशीलता कमजोरी नहीं होती, और मौन भी कई बार सबसे ऊँचा प्रतिरोध होता है।

वे चली गईं—पर अपने पीछे एक विरासत छोड़ गईं:

त्याग की, धैर्य की, और उस प्रेम की जो बिना शर्त होता है।

शायद यही किसी जीवन की सबसे बड़ी सफलता है—

कि उसके जाने के बाद भी उसकी कहानी लोगों के भीतर जीवित रहे।

मेरी रानी मौसी... आप चली गईं, पर आपके होने का अर्थ आज भी मेरे जीवन में साँस लेता है।